धर्म उत्कृष्ट मंगल

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़

पूर्व कुलपति, सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

धर्म को उत्कृष्ट मंगल कहा गया है। अहिंसा, संयम और तप जिस धर्म में होते हैं वह धर्म मंगल है। धर्म बहुत व्यापक शब्द है। सम्पूर्ण अच्छी बातें धर्म में समाहित है। दूसरों को सुख देने से सुख प्राप्त होता है और दूसरों को दुख देने से दुख प्राप्त होता हैं परोपकार, दया, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दानादि गुण धर्म में समाहित है। इनको जीवन में धारण करना चाहिए।

मनुष्य का जीवन क्षणभंगुर है। पत्ते पर स्थित ओस बिन्दु की तरह हवा के झकोरे खाकर नाशवान है। इस छोटे से आयु खंड में जिसने जितना धर्म कर्म कर लिया उसका जीवन उतना ही सार्थक है और जिसने व्यर्थ में ही जीवन को गवा दिया वह अपने जीवन के मूल्य को नहीं समझ पाया। जीवनकाल में धर्म ही मनुष्य को त्राण दे सकता है। धर्म की व्याख्या करने के लिए इसके लौकिक और पारलौकिक स्वरूप को समझना आवश्यक है। लौकिक धर्म वह धर्म है जिसे हम इस लोक में करते है और उसका फल भोगते हैं। पारलौकिक धर्म इस लोक से परे है और वहीं मानव जीवन की सच्ची कमाई है। इसी धर्म को प्राप्त करने के लिए मानव को प्रयास करना चाहिए।

इस तथ्य की सत्यता को हृदयंगम कर भारतीय ऋषियों ने अपने वेद ज्ञान के संस्मरणों, निष्कर्षों को स्मृति शास्त्र के रूप में मानव समाज के हितार्थ प्रगट किया। जिससे वे भोगवाद की आसुरीधारा में न बहकर आत्मकल्याण का सर्वप्रथम ध्यान रखें और अर्थ तथा काम के साथ ही धर्म और मोक्ष के साधन के लिये भी प्रयत्नशील रहें।

मनुष्य का आध्यात्मिक विकास तभी सम्भव है, जब वह अपना आचरण शुद्ध रखे और संयम नियम का पालन करता रहे। इसके लिये स्मृतिकारों ने सोलह संस्कारों का विधान बनाया है, जिसमें मनुष्य को जन्म से मरण तक अपना रहन–सहन शुद्ध और सात्विक रखकर मलिनता, अपवित्रता से दूर रहने का आदेश दिया गया है।

मलिनता और अपवित्रता चाहे बाह्य हो अथवा चाहे आन्तरिक, मनुष्य के उच्चभावों को नष्ट करके उसे पाप कर्मों की तरफ प्रेरित करती हैं। इसलिये मानव को सुसंस्कारित बनाने के उद्देश्य से अनेक नियम बनायें, जिससे वे अनुशासन, मर्यादा, नैतिकता आदि की शिक्षा प्राप्त करके वास्तविक मनुष्यता का विकास कर सकें।

जन्म के समय मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में विशेष अन्तर नहीं होता, वरन् यदि देखा जाय तो मनुष्य का नवजात शिशु अन्य पशुओं के बच्चे की अपेक्षा अधिक असमर्थ और असहाय स्थिति में होता है। कुछ बड़ा होने पर भी वह स्वयं कोई नयी बात कर सकने में असमर्थ होता है। परिवार और समाज तथा अपने चतुर्दिक वातावरण से वह बहुत कुछ सीखता है। इसलिये जैसे संस्कार उसमें डाले जायेंगे वैसा ही आचरण वह समाज में करेगा। जिस देश काल व समाज में आचारण की जो पवित्र परम्परायें चलती रहती हैं, वह सदाचार है—

तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्य्यक्रमागतः।

वर्णानां सान्तरालानां स सदाचारः उच्यते।।

सदाचार एक ऐसा व्यापक सार्वभौम तत्त्व है जो देश काल की संकीर्ण सीमा से आबद्ध नहीं किया जा सकता—जैसे सूर्य की रश्मियां सारे संसार के लिये उपयोगी होती हैं, उसी प्रकार सदाचार भी प्राणिमात्र के लिये उपयोगी होता है। इसीलिये आचार्य मनु ने इस देश में उत्पन्न शिष्ट लोगों से संसार के सभी मनुष्यों को अपने—अपने चरित्र को सीखने की शिक्षा दी है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं—स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।

महाभारत में वेदव्यास ने भी यही कहा है कि सभी आगमों में आचार ही प्रधान है—'सर्वागमानां आचारः प्रथमं परिकल्पते'। आचार से ही धर्म की उत्पत्ति होती है। आचार धर्म का मेरुदण्ड है, जिसके बिना धर्म टिक नहीं सकता। आचार का पालन करने वाला मानव सभी प्राणियों में श्रेष्ठ है—'गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रबीमि, नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्।' विश्व में जितने भी प्राणी हैं उन सभी में मानव श्रेष्ठ है। सभी मानवों में ज्ञानी श्रेष्ठ हैं; और सभी ज्ञानियों में आचारवान् श्रेष्ठ है।

श्रेष्ठ आचार ही मुक्ति का द्वार है।आचार की प्रतिष्ठा के लिये मन और वाणी की एक रूपता परमावश्यक है। मन और वाणी की प्रतिष्ठा पर बहुत बल दिया गया है। आचार की प्रतिष्ठा के लिये सत्य का अनुष्ठान परमावश्यक है।

धर्म के अनेक स्रोतों में से सदाचार एक है। इसको धर्मसूत्रों में शील, सामयाचारिक अथवा शिष्टाचार कहा गया है और स्मृतियों में आचार एवं सदाचार। षडंग वेद, अशेष स्मृतियां, पुराण, जैनागम, बौद्ध त्रिपिटक, गुरुग्रन्थ साहब, बाइबिल एवं कुरान आदि विश्व के समस्त वाङ्मय सदाचार और धार्मिक सहिष्णुता की ही शिक्षा देते हैं और तद्विपरीत कदाचार या दुराचार को परित्याज्य बतलाते हैं। दुराचारी पुरुष लोक में निन्दित होता है, दुःख प्राप्त करता है, और अल्पायुवाला होता है।